Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 48-50
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

अज्ञेय की रचनाधर्मिता

प्रस्तुत शोधपत्र में प्रयोगवादी कवि 'अज्ञेय' की रचनाधर्मिता का विश्लेषण किया गया है। अज्ञेय का काव्य प्रयोगवाद अथवा नई कविता के काव्यान्दोलनों का समानान्तर काव्य है। साहित्य में भी विशेष रुचि रखने के कारण अज्ञेय ने काव्य की धारा में अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय उसी प्रकार दिया है, जिस प्रकार वे विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोगशाला से जुड़े रहे। समाज के प्रति अज्ञेय का उत्तरदायित्व मानव-मानव के बीच दूरियों को मिटाता हुआ दृष्टिगत होता है। सामाजिक प्रतिबद्धता के संदर्भ में अज्ञेय का यह भी कहना है कि ''समाज की सही पहचान के बिना और अपने को विवेक की आग में शोधर बिना जो प्रतिबद्धता होगी, वह समाज को भी अंधेरे गर्त में ले जाएगी।''

डॉ.अब्दुर्रहीम

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार तथा एक प्रबुद्ध संपादक भी रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यात्रा वृत्तांत भी लिखे। अज्ञेय को काव्य के क्षेत्र में प्रयोगवाद के जनक अथवा प्रवर्तक कहा जाता है। निःसन्देह छायावादी तथा प्रगतिवादी हिन्दी–काव्य का रूढ़िग्रस्त स्वरूप अज्ञेय के प्रयास से ही प्रयोगवादी काव्यान्दोलन में प्रतिफलित हुआ है। वैसे अज्ञेय ने प्रयोगवाद भाब्द का विरोध किया। उन्होंने अपने दूसरा तारसप्तक (सन् 1951 ई0) में कहा भी है कि ''प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक है निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।[1] अज्ञेय ने अपनी संपादन सेवा के अन्तर्गत सन् 1936 ई0 में 'सैनिक', सन् 1937 में 'विशाल भारत' तथा सन् 1947 ई0 में प्रयाग से 'प्रतीक' का संपादन किया। इसके अलावा उन्होंने' 'आनन्दबन्धु–पत्रिका', 'सम्मेलन–पत्रिका', 'आरती', 'बिजली', 'थाट', 'वाक', 'एवरीमैन्स', 'नवभारत टाइम्स', 'साप्ताहिक दिनमान' तथा 'नया प्रतीक' का भी प्रकाशन किया। अज्ञेय का काव्य प्रयोगवाद अथवा नई कविता के काव्यान्दोलनों का समानान्तर काव्य है। दूसरे भाब्दों में कहें तो अज्ञेय के प्रयास से हिन्दी काव्य में नवीन परिस्थितियों तथा नवीन मानव–जीवन मूल्यों की खोज में नये प्रयोग ही नई कविता की आधार शिला है अथवा यह कहें कि प्रयोगवाद का उत्तरवर्ती रूप या विकसित रूप ही नई कविता भी है।

अज्ञेय के प्रथम काव्य संग्रह भग्नदूत में नव्य–चेतना के साथ प्रयोगवादी काव्य धारा का उन्मेष प्रणय के रूप में हुआ है। इस काव्य संग्रह में प्रकाशित 'शिखा', 'हास्य' और 'बत्ती' आदि रचनाएँ अन्योक्तिमूलक हैं। उनका 'चिन्ता' काव्य संग्रह दो भागों में विभक्त है – 'विश्व–प्रिया' और 'स्थापन'। इस काव्य–संग्रह में अज्ञेय ने स्त्री–पुरूष के मध्य प्रणयानुभूतियों को उजागर करने का नवीन प्रयोग किया है। उनका 'इत्यलम्' काव्य संग्रह चार खण्डों में विभक्त है। जिनमें 'बन्दी का स्वप्न', 'हिय हारिल', 'वंचना के दुर्ग' तथा 'मिट्टी की ईहा हैं। 'बन्दी का स्वप्न' में अज्ञेय ने युगीन क्रान्ति को दर्शाया है। 'हिय हारिल' स्वयं कवि के प्रतीक रूप में अभिव्यक्ति का माध्यम बना है। 'वंचना के दुर्ग' में प्रयोगात्मक एवं व्यंग्यप्रधान कविताएँ हैं। 'मिट्टी की ईहा' में कवि ने अपने ही जीवन का आदर्शात्मक चित्रण किया है।

अज्ञेय के काव्य संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' में प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से प्रतीकात्मक भौली में जीवन का चित्रण हुआ है। उनकी कविता 'बावरा अहेरी' सूर्य के प्रतीक रूप में चित्रित हुई है। इस संग्रह की अन्य रचनाएँ जीवन दर्शन पर आधारित तथा प्रकृति–सौन्दर्य से सम्बन्धित हैं। 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' की अधिकांश रचनाएँ जगत के वास्तविक सत्य का पर्दाफाश करती हैं। इस काव्य–संग्रह में प्रकाशित 'नई कविता' नामक रचना, नई कविता के परिप्रेक्ष्य में प्रयोगवादी भावों की अभिव्यक्ति का विरोध करने वाले आलोचकों पर व्यंग्य के रूप में रची गई है।

'अरी ओ करूण प्रभामय' काव्य–संग्रह में प्रकाशित कविताओं में कवि के प्रयोगवादी विचारों की अभिव्यक्ति पर ही बल दिया गया है। कवि की एक अति लघु कविता 'सोन मछली' सामाजिक सीमाओं में बद्ध व्यक्ति की छटपटाहट का दृश्य बिम्ब है, जो समाज के समक्ष अदृष्ट है –

''हम निहारते रूप/काँच के पीछ/हाँप रही है मछली/ रूप – तृषा भी रूप तृषा भी/(और काँच के पीछे)/है जिजीविषा।'' [2]

'आँगन के पार द्वार' में कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति के

अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), मुमताज़ पी.जी. कॉलेज, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

नवीनतम रूप का चित्रण हुआ है, जहाँ कवि वस्तुवाद से पलायन कर रहस्यवाद की ओर अग्रसरित हो गया है। यह वही स्थिति है जहाँ साधक और साध्य में अन्तर शेष नहीं रह जाता है। इसी प्रकार 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य–संग्रह की कविताएँ नई कविता की परिधि में श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। अज्ञेय मानवता के सशक्त पक्षधर हैं। ''मानव सेवा उनका संकल्प है। मानव उत्थान उनकी नियत है और मानव सापेक्ष लेखन उनका कवि धर्म है। अज्ञेय की कल्याणकारी दृष्टि व्यक्ति और राष्ट्र तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसका क्षेत्र समस्त मानवता की भावभूमि है।''(3) वे कहते हैं –

''क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है/वह मेरा भाई है —
मैं उस कोड़े को छीन कर तोड़ दूँगा,
मैं इन्सान हूँ और इन्सान वह अपमान नहीं सहता।''(4)

समाज के प्रति अज्ञेय का उत्तरदायित्व मानव–मानव के बीच दूरियों को मिटाता हुआ दृष्टिगत होता है। वे कहते हैं –

''मैं सेतु हूँ ————/वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है।
जो हृदय से हृदय को/जो मानव को एक करता है।''(5)

'मैं वहाँ हूँ' कविता में अज्ञेय ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए कहा है :

''यह जो मिट्टी गोड़ता है/कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है/उसकी मैं साधना हूँ। यह जो मिट्टी फोड़ता है/मड़िया में रहता और महलों को बनाता है/उसकी मैं आस्था हूँ।

X X X

मशक से सड़क सींचता है/रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है, जो भी जहाँ भी पिसता है/पर हारता नहीं न मारता है – पीड़ित श्रमरत मानव/अविजित दुर्जेय मानव/ कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा – उसकी मैं कथा हूँ।'' (6)

सामाजिक प्रतिबद्धता के सन्दर्भ में अज्ञेय का यह भी कहना है कि ''समाज की सही पहचान के बिना और अपने को विवेक की आग में शोध बिना जो प्रतिबद्धता होगी, वह समाज को भी अंधेरे गर्त में ले जायेगी।''(7)

शोषित जन के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति विरोध और घृणा का स्वर उनकी कविता में मुखर हुआ है –

''तुम, जो बड़े–बड़े गद्दों पर ऊँची दुकानों में,
उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में,
तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल–दान,
सुनों, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।'' (8)

समाज में उपेक्षित व्यक्ति ही सृजनरत है। 'भावनाएँ तभी फलती हैं कि उनसे लोक के कल्याण का अंकुर कहीं फूटे।''(9) 'हमने पौधे से कहा' कविता में अज्ञेय कहते हैं –

''किन्तु वह अनुपल, अनुक्षण/और, और गहरे
टोहता था बुदबुदाते उस अंधकार में :
सड़ा दे दो/गला दे दो/पचा दे दो
कचरा दो, राख को अशुच दो उच्छिष्ट दो –
वह तो है सृजन–रत/उसे सब रस है।'' (10)

मानव के प्रति मानव की क्रूरता पर अज्ञेय का हृदय द्रवित होता है। वे अपनी 'हिरोशिमा' कविता में कहते हैं –

''छायाएँ मानव–जन की/दिशाहीन ————————
छायाएँ मानव–जन की/नहीं मिटीं लम्बी हो–होकरः
मानव ही सब भाप हो गए।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं/झुलसे हुए पत्थरों पर,
उजड़ी सड़को की गच पर।
मानव का रचा हुआ सूरज/
मानव को भाप बना कर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह/
जली हुई छाया, मानव की साखी है।'' (11)

अज्ञेय के काव्य का समीक्षण करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उनके काव्य में प्रतीकों, बिम्बों तथा उपमानो आदि की भरमार है, जिस पर टी0एस0 ईलियट का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपने काव्य में नये प्रतीक, नये बिम्ब, नई भाषा, नई शैली, नये शब्द और नवीन भाव–भूमियों का स्थापत्य किया है, जिनका सीधा सम्बन्ध जीवन से जुड़ा है। कवि ने 'कलगी बाजरे की कविता' में अपनी प्रयोगवादी तथा नवीन प्रतीकात्मकता का परिचय दिया है। साथ ही छायावाद कालीन या पूर्व कवियों के काव्य में प्रस्तुत परम्परागत प्रतीक योजना तथा उपमानो आदि पर कटु व्यंग्य भी किया है। प्रेयसी के छरहरे तथा सुडौल शरीर के सौन्दर्य की अनुभूति 'हरी बिछली घास' तथा 'कलगी बाजरे की' के रूप में कुछ इस प्रकार की गयी है :

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है।
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है''।(12)

इसी प्रकार 'बना दे चितेरे' कविता में 'सागर' जीवन का प्रतीक है तथा उछली हुई मछली जिजीविषा का प्रतीक है। उनकी 'झील का किनारा' कविता में 'झील' का किनारा' वियोग का प्रतीक है। इसी प्रकार 'एक उदास सांझ' असफल प्रेम का प्रतीक है तथा 'असाध्य वीणा' कविता में 'वीणा' आत्मा की प्रतीक है।

अज्ञेय ने भाव की स्पष्टता के लिए नये उपमानों का प्रयोग भी निरन्तर किया है। उनके काव्य में जगत के ही विविध उपकरणों के माध्यम से अप्रस्तुत उपमानो का नियोजन किया गया है। जैसे, 'और मुक्त स्रोत–सा सभी ओर चला उजाला' या फिर 'रोमांच बिजली–सा सबके तन में दौड़ गया'।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में स्थान–स्थान पर प्राचीन एवं नवीन अप्रस्तुत के माध्यम से नवीन बिम्बों का सजीव विधान प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं में भावों एवं रूपों के सचल एवं सजीव चित्र अंकित हो जाते हैं, जिनमें वस्तु अथवा भाव साकार रूप में प्रतीत होते हैं। उनकी कविता 'बना दे चितेरे' में उछली हुई मछली की मरोड़ी हुई देह–वल्ली में जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर हो उठी ही। जिजीविषा का यह रूप मानवीय जीवन के भविष्य का ही जाल बुनता हुआ दृश्यमान है।

अज्ञेय को यद्यपि व्यक्तिवादी कवि कहा गया है, ''अज्ञेय के काव्य में प्रखर वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति हुई है।''(13) किन्तु

उन्होंने व्यक्ति को समाज की इकाई के रूप में देखा है। इसलिए उनकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्व रहा है, जिसके अस्तित्व को बनाये रखना भी उनका लक्ष्य है। उनकी मौलिक अभिव्यक्ति व्यष्टि और समष्टि के समन्वय की ओर अधिक रही है। उनकी 'नदी के द्वीप' तथा 'यह दीप अकेला' जैसी कविताएँ समन्वय का द्योतक हैं। अज्ञेय विकास के लिए व्यष्टि और समष्टि अथवा लघु और विराट का युक्तियुक्त सम्बन्ध स्थापित करता है, जिसे वह आवश्यक भी समझता है। नदी के द्वीप कविता में वे कहते हैं :

''हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये
वह हमें आकार देती है।

र

र र

किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं। [14]

इसी प्रकार 'यह दीप अकेला' कविता में कवि कहता है–

''यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।'' [15]

अन्ततोगत्वा हम कह सकते हैं कि **टी0एस0 ईलियट, एजरापाउण्ड और एच0 लारेन्स के प्रतीकवाद, बिम्बवाद, अस्तित्ववाद और अतियथार्थवाद से प्रेरित होकर ही प्रयोगवादी काव्य धारा का प्रवाह हुआ। इसके साथ–साथ यूरोप के दो काव्यान्दोलनों, प्रतीकवाद और रूपवाद से प्रभावित हो हिन्दी काव्य में नये सत्य की खोज प्रयोगवादी काव्य–धारा के रूप में प्रवांच चढ़ी, जिसका श्रेय अज्ञेय को ही है। यही है अज्ञेय की रचनाधर्मिता जिसके साथ अज्ञेय ने अपने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।** उन्होंने अपने जन्म दिवस पर एक कविता – 'जन्म दिवस' की रचना की और स्वयं ही कहा है –

''मैं मरूँगा सुखी/क्योंकि तुमने जो जीवन दिया था उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ/खुले हाथों मैंने उसे वारा है – मैं मरूँगा सुखी/मैंने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।'' [16]

इस प्रकार अज्ञेय ने काव्य ही नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन कार्य किया है। डॉ0 नलिन कान्त उपमन्यु के अनुसार – ''आधुनिक हिन्दी साहित्य के शिखर–पुरूष अज्ञेय से भाायद ही साहित्य की ऐसी कोई विधा बची हो जिस पर उन्होंने पूरी गरिमा एवं पहुँच पकड़ के साथ यात्रा न की हो। जितने वैभव एवं त्वरा के साथ उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास एवं गद्य की आधुनिक विविध विधाओं पर लेखनी चलायी है, उसी वैभव के साथ पत्रकारिता एवं सम्पादन के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है।''[17] डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार ''कविता की तरह ही उनकी कहानियों में सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है।''[18]

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी शेष रह गया, उसके सम्बन्ध में अज्ञेय ने अपनी कविता 'जो कहा नहीं गया' में कहा है –

''है, अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया

– – – – – – – – – – – – – – – –

उस विशाल में मुझ से/बहा नहीं गया।
इसलिए जो और रहा, वह/कहा नहीं गया।'' [19]

सन्दर्भ :

(1) अज्ञेय : दूसरा तार सप्तक, भूमिका से।

(2) *अज्ञेय : सोन मछली (कविता), अरी ओ करूण प्रभामय'।*

(3) *मुद्गल, डॉ0 शंकर बसंत : कवियों के कवि अज्ञेय, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स, कानपुर, 'प्राक्कथन' से।*

(4) *'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', पृ. 26.*

(5) *अज्ञेय : मैं वहाँ हूँ (कविता) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये'।*

(6) *अज्ञेय : मैं वहाँ हूँ (कविता) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये'।*

(7) *अज्ञेय : 'धार और किनारे', पृ0 148.*

(8) *अज्ञेय : घृणा का गान (कविता), 'इत्यलम्', पृ. 51.*

(9) *'सदानीरा' (भाग–1), पृ0 234.*

(10) *हमने पौधे से कहा (कविता), 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये'।*

(11) *आचार्य, नन्दकिशोर (संपादक) : हिरोशिमा (कविता) 'अरी ओ करूण प्रभामय', अज्ञेय संचयिता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 94.*

(12) *अज्ञेय : कलगी बाजरे की (कविता) 'हरी घास पर क्षण भर'।*

(13) *रणसुभे, डॉ.सूर्यनारायण : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ0 86.*

(14) *नदी के द्वीप (कविता)।*

(15) *अज्ञेय : यह दीप अकेला (कविता) 'बावरा अहेरी'।*

(16) *अज्ञेय : जन्म दिवस (कविता) 'इत्यलम्'।*

(17) *उपमन्यु, डॉ. नलिनकान्त : 'आत्मनेपद', अज्ञेय की सम्पादन कला, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।*

(18) *प्रसाद, डॉ.राजेन्द्र : 'अज्ञेय : कवि और काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 48.*

(19) *अज्ञेय : बावरा अहेरी।*

❁❁

Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 51-53
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

गाँधीवादी चिंतक : केयूर भूषण

प्रस्तुत शोधपत्र, गाँधीवादी चिंतक - केयूर भूषण के विचारों से सम्बंधित है। केयूर भूषण को यदि गाँधीवादी विचारक कहा जाता है, तो आखिर यह गाँधीवाद है क्या ? गाँधीजी मानते थे, गाँधीवाद कोई वाद नहीं है, न मुझे कोई वाद चलाना है और न सम्प्रदाय, मैं तो केवल सत्य को जानता हूँ और सत्य की बातें कहता हूँ और करता हूँ। वास्तव में गाँधीवाद कोई वाद नहीं, केवल गाँधी के विचार ही थे। केयूर भूषण भी केवल सत्य को ही जानते थे, कोई संप्रदाय भिन्न नहीं है, यही मानते थे। गाँधीजी और केयूर भूषण के विचार बहुत कुछ एक से थे, तभी तो कहा जाता है कि केयूर भूषण गाँधी विचारधारा के थे।

डॉ.(श्रीमती) अलका श्रीवास्तव*, डॉ.(श्रीमती) मधुलता बारा एवं आरती उपाध्याय*****

परिचय :

'जीवितं सफलतम् तस्य परार्थ उद्यतः सदा' महर्षि वेदव्यास की इस उक्ति के आजीवन अनुपालक, दलितों के देवदूत, समाज–सुधारक, छत्तीसगढ़ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, छत्तीसगढ़ के विचारक, छत्तीसगढ़ के महात्मा, छत्तीसगढ़ के गाँधी, जन–नायक केयूर भूषण का जन्म छत्तीसगढ़ अंचल के छोटे से ग्राम जाँत में आर्थिक दृष्टि से संपन्न व सुशिक्षित, बुद्धिजीवी वर्ग के मिश्रा परिवार में 1 मार्च सन् 1928 में हुआ था। पिता श्री मथुरा प्रसाद मिश्रा व माता श्रीमती रोहणी देवी मिश्रा का छत्रछाया मिला।

केयूर भूषण भी असत्य पर सत्य, हिंसा पर अहिंसा, अधर्म पर धर्म, असद् पर सद् पशुबल पर आत्मबल भौतिक मूल्यों पर आध्यात्मिक मूल्य, पशुता पर मनवता और दुराचार पर सदाचार और नैतिकता की घोषणा की। केयूर भूषण का भी मानना गाँधीजी की तरह ही था – सत्य और सेवा से ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। गाँधीजी हमेशा साध्य के साथ–साथ साधन की पवित्रता की ओर ध्यान देते थे।

गाँधीजी के मूल स्तंभ सत्य और अहिंसा तथा सर्वोदय, सत्याग्रह एवं रामराज्य तीन आदर्श थे। केयूर भूषण ने भी गाँधीजी की तरह रामराज्य की कल्पना की, सर्वोदय संस्था से हमेशा केयूर भूषण भी जुड़े रहे और लोगों का सत्य का आग्रह करते रहे। गाँधीवाद की व्याख्या करते हुए रामनाथ सुमन लिखते हैं– ''गाँधीवाद उस सूर्य की भाँति है, जिसे सब अपना सकते हैं। एक चरित्रपूर्ण तत्वज्ञान है, धार्मिक भी है, अध्यात्मिक भी है। यह राजनीतिक भी है, आर्थिक भी, यह जीवन का न्याय है, जीवन के प्रत्येक स्तर और संपूर्ण मानव–जाति को स्पर्श करता है।''[1] संक्षेप में गाँधी जी की सोच और गाँधी जी की कार्यप्रणाली को ही गाँधीवाद कह सकते हैं।

गाँधीजी की सोच, उनकी जीवन–शैली और कार्यप्रणाली ही 'गाँधीवाद' है। ''निरंतर आत्मपरिक्षण और प्रयोग गाँधीजी की विशिष्टता रही है, इसलिए गाँधीवाद में कुछ तत्व और प्राण तत्व स्थाई हैं, तो कुछ देहरूप में और परिवर्तनशील एवं विकासशील हैं।''[2]

गाँधीजी की तरह केयूर भूषण जी को भी राजनीतिक नेता समझा जाता है। राजनीतिक नेता के रूप में केयूर भूषण भी महत्वपूर्ण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि 13 वर्ष की उम्र में स्वतंत्रता के लिए जेल जाने वाले सबसे छोटे रेता थे। प्रथम कोटि के समाज–सुधारक, सत्य–शोधक, लेखक–विचारक थे, उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू थे, लेकिन सबसे बढ़कर बात यह थी कि उनका लक्ष्य सर्वोदय था। जो लक्ष्य गाँधीजी का था, वही लक्ष्य केयूर भूषण का था– व्यक्ति का भी सर्वोदय और समाज का भी सर्वोदय। व्यक्ति का सर्वोदय का अर्थ है, जीवन के सभी पहलुओं का उत्थान, समाज के सर्वोदय का अर्थ है, समाज के सभी अंगों का उत्थान।

गाँधी जी विश्व इतिहास में अहिंसा के सबसे बड़े शिक्षक और प्रचारक हुए हैं। अहिंसा द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की कठिन समस्याओं का हल खोजा। केयूर भूषण भी अहिंसा के द्वारा ही सामाजिक एवं राजनीतक पहलुओं को आसानी से सुलझाने की कोशिश करते थे। गाँधीवाद के मूल तत्व के अंतर्गत सत्य, अहिंसा और सेवा–भाव प्रमुख हैं। इनमें से सत्य और अहिंसा दो गाँधीवाद के प्राण हैं। अहिंसा को गाँधीजी सत्य का और सत्य को अहिंसा का पूरक मानते हैं।

**निर्देशक एवं प्राचार्य श्री कुलेश्वर महादेव शासकीय महाविद्यालय, गोबरा नयापारा, रायपुर (छत्तीसगढ़)*
***सह-निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*
****शोधार्थी, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*

गाँधी–विचार के मूल सिद्धांत :

ट्रस्टीशिप, विकेंद्रीकरण, एकता, परिवर्तन आदि गाँधीवाद के मूल सिद्धांत हैं। ट्रस्टीशिप के सिद्धांत से गाँधीजी का तात्पर्य था कि मनुष्य अपनी मात्र उतनी ही संपत्ति का अधिकारी है, जितनी उसकी नित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में जरूरी है, शेष धन उसका नहीं समाज है, उस धन का वह मालिक नहीं मात्र संरक्षक है। आर्थिक समानता, समाजवाद तथा रामराज्य की दिशा में केयूर भूषण धन का कुछ स्थानों पर संग्रह घातक मानते थे। उनका यह भी मानना था कि प्रत्येक को खाने के लिए राजसी भोग मिले ऐसा नहीं, रहने के लिए विशाल महल सुलभ हो ऐसा भी नहीं, परंतु प्रत्येक को उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मिलना अनिवार्य है। यह तभी संभव होगा जब देश की संपत्ति, जो कुछ भागों में केंद्रित हो गई है, अहिंसात्मक साधनों द्वारा विकेंद्रीकृत की जाए।

गाँधी–विचार का आदर्श :

गाँधी जी की तरह केयूर भूषण कुशल राजनीतिज्ञ, समाज–सुधारक और अध्यात्मिक आस्था–संपन्न महान आत्मा थे, अर्थात् महात्मा थे। उनके जीवन के अनेक पक्ष हैं, जो उनके द्वारा किए गए व्यवहारी अनुप्रयोग के प्रतिफलन और जीवन–दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके पाास आत्मशक्ति थी, तर्कशक्ति नहीं, सहानुभूति है वाद–विवाद नहीं, सत्य और अहिंसा उतनी ही प्राचीन है, जितनी यह पहाड़ियाँ ऐस मानना था गाँधीजी और केयूर भूषण का। मेरा मानना है यदि इसे आप वाद के नाम से न पुकारें, क्योंकि इसमें कोई बात तो है ही नहीं। ''यदि एक पंक्ति में कहा जाए तो अहिंसा का राजनीति में प्रयोग ही गाँधी–विचार का आदर्श है।''[3]

गाँधीवाद जैसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है। अतः वे अपने कथन की पुष्टि में गाँधीजी के निम्नांकित शब्दों को प्रस्तुत करते हैं, जो कि आचार्य कृपलानी लिखित पुस्तक को दिए गए उनके पूर्व वचन में मिलते हैं– ''गाँधीजी में कोई विवादद परिवर्तनहीन ही ना थी। वह स्वच्दंद निर्बाध तथा ऐसे थे कि उनके विषय में भविष्यवाणी नहीं कर सकता था, इसलिए वे उत्तेजनात्मक और कठिन थी। मार्च 1936 में सेवा संघ के सदस्यों के सामने कहा था– 'मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने किसी नए सिद्धांत का अविष्कार किया है, मैंने तो केवल जो अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखानी है, सत्य और अहिंसा काल से चले आ रहे हैं, आप इसे गाँधीवाद न कहिए, वा दनाम की कोई चीज नहीं है।''[4]

सर्वोदय गाँधीजी का सामाजिक आदर्श है, वैसे ही केयूर भूषण का आदर्श भी सर्वोदय विचार सामाजिक आदर्श है। सर्वोदय का अर्थ सबकी उन्नत और उसका ध्येय है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से गाँधीवाद के संदर्भ में विचार–विमर्श करें, तो यह एक व्यापक जीवन–दर्शन है। अतः इसमें जिन चीजों का समाहार होता है, उन सब चीजों की पूर्व चर्चा करने की कोशिश की गई है :

(1) आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य :

(1.1) नैतिकता : गाँधी–विचारधारा के अंतर्गत नीति की महिमा अनेक रूपों में प्रतिपादित की गई है। केयूर भूषण अपने भाव को अपनी रचना में आज की भ्रष्ट राजनीति को नैतिक मूल्यों के ह्रास के मूल में देखा जीवन–मूल्यों का विघटन, उपेक्षा–भाव, स्वार्थपरक कैसे नैतिक विंसगतियों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। शायद इसलिए उन्होंने अपनी साहित्यिक अभिव्यति का निशाना राजनीतिक क्षेत्र को भी बनाया। हम कहें तो गाँधी–विचार का नैतिक–पक्ष सत्य और अहिंसा आदि भावनाओं से परिपूर्ण है।

(1.2) सत्य और अहिंसा : महात्मा गाँधी के विचारों के प्रारंभिक विकास के बारे में सुमन जी लिखते हैं, ''महत्मा गाँधी जी ने अपने विचारों के बीज रूप में 'हिंद स्वराज' में 30 वर्ष पहले लिख छोड़ा था। उस दिन से आज तक उन्होंने भारतवर्ष में अपनी राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन को चलाया।''[5] गाँधीजी के सिद्धांत लोगों में सत्य, अहिंसा के नाम से पहचाने गए।

केयूर भूषण ने भी सत्य और अहिंसा को प्रधान रूप माना। बड़ी–से–बड़ी कठिनाइयों का सामना भी वे अहिंसा की राह में चलकर करते थे। पंजाब में उनके द्वारा कई दिनों तक निराहार रहना, मौन रहना इन सबके के द्वारा विजय की प्राप्ति हुई थी। सत्य–शोधक गाँधीजी कहते थे, ''हम सब एक ही सत्य के अंश हैं, इसलिए हमारा संबंध परस्पर प्रेम, सहयोग, उदारता, सहिष्णुता का हो सकता है न कि द्वेष, झगड़े और मार–काट का।''[6] गाँधीजी के जीवन का उद्देश्य और केयूर भूषण के जीवन का उद्देश्य समानता से साक्षात्कार था। आत्मा सत्य है, एक ऐसे ध्रुवतारा के समान है, जिस पर सारे जीवन की कार्यप्रणाली केंद्रित है।

(2) धार्मिक परिप्रेक्ष्य :

(2.1) ब्रह्मचर्य : वास्तव में मन, वचन और कर्म में इंद्रियों का दमन ब्रह्मचर्य है। केयूर भूषण भी मन और इंद्रियों को परमेश्वर के मार्ग पर चलने को ब्रह्चर्य मानते हैं।

(2.2) अपरिग्रह : गाँधीजी साध्य और साधन दोनों की पवित्रता की ओर ध्यान देते थे, इसलिए साधन की पवित्रता के लिए अपरिग्रह को महत्वपूर्ण मानते थे। यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें। उन्होंने विश्वजीत की दृष्टि से कहा था– ''अगर भारत में ऐसी चीज हो, जिसकी आवश्यकता अन्य देश को है अर्थात् भारत का कर्त्तव्य है कि उस चीज को मानवता की दृष्टि से स्वप्रेरणा से प्रेरणा दे।''[7] गाँधीजी ने अपरिग्रह के परेदार के रूप में अस्वाद और अस्तेय को माना।

(2.3) अस्तेय : केयूर भूषण जीभ का विग्रह करके सात्विक आहार को ईश्वर का प्रसाद मानकर शरीर के लिए आवश्यक मात्रा में ही अस्वाद–वृत्ति मानते थे। श्रमक रने के लिए आवश्यक आहार को ही खाते थे और कहते थे– ''शरीर में से छीन जाने वाले तत्वों को फिर पूरा करने और इस प्रकार शरीर को कार्य करने लायक स्थिति में रखने के लिए आहार की आवश्यकता है।''[8] केयूर भूषण कई वर्षों तक बिना नमक का भोजन भी अपने आहार में सम्मिलित किए।

(2.4) देश–सेवा : गाँधीजी की तरह केयूर भूषण भी 13 वर्ष की छोटी उम्र में देश–सेवा के लिए 9 माह तक जेल में रहे, जैसे कि गाँधीजी का मंतव्य था कि यदि असत्य और हिंसा से मुझे देश की आजादी मिली तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा। ऐसी ही विचारधारा केयूर भूषण की भी थी।

(2.5) सेवा–भावना : सेवा गाँधी–दर्शन का महान अंग है। सेवा का आश्रय लेकर ही एक गाँधी–विचार प्रेरक ही सत्याग्रही समाज में अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है। सेवा के अंतर्गत

मानवता की सेवा, मानव की सेवा, पशुओं की सेवा, यहाँ तक कि प्रकृति की सेवा का पाठ पढ़ाना ही भावना है। गाँधी और केयूर भूषण का जीवन इस बात का महान उदाहरण है।

(2.6) कर्म–सिद्धांत : भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 80 प्रतिशत जनता गाँव में निवास करती है तथा उनका व्यवसाय कृषि है। यहाँ जनता शब्द से मुख्य आशय किसान वर्ग से होता है। केयूर भूषण की रचनाओं में ''किसान, श्रमिकों के माध्यम से विचारों को बहुत अच्छे और यथार्थ रूप में उकेरा है। वे अपने गाँव के भीतर समाज में छत्तीसगढ़ की गहराई को देखते हुए शब्दों की माला गुँथते चलते हैं। 'कहाँ बिलागे मोर धान के कटोरा' में मार्मिक चित्रण है। लोग परस्थितिवश गाँव को छोड़कर रोजी–रोटी के शहरों में प्रस्थान करते हैं। किसान जो कि भूमि का मालिक था, बेघर हो गया और बाहर से आए बेघर व्यक्ति आज भूमि के मालिक बन रहे हैं।''[9] संत्रास को लेखक ने अपने उपन्यास में चित्रित किया है।

(3) सामाजिक परिप्रेक्ष्य :

नारी–समस्या महात्मा गाँधी ने पहली बार नारियों को स्वतंत्रता समर में भाग लेने के लिए आह्वान किया था। गाँधीजी ने स्त्रियों की दुःखद स्थिति सुधारने के लिए पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह इत्यादि का विरोध किया। इसी तरह केयूर भूषण भी नारी के चरित्र को ही सच्चा आभूषण मानते थे और अपनी रचनाओं में नारी का स्थान सम्मानित बनाने के लिए जागृत करने के लिए उन्होंने भरपूर प्रयास किया। ''इसकी छवि छत्तीसगढ़ के नारी–रत्न उनके उपन्यास 'कुल के मरजाद' में स्पष्ट दिखाई देती है।''[10]

(3.1) सांप्रदायिकता : सांप्रदायिकता सद्भाव को समाप्त करते हुए धार्मिक या सांप्रदायिक मतभेद को मिटाने के लिए सांप्रदायिकता का आश्रय लेना अत्यंत बुरा मानते थे। धर्म के लिए हमें जबरदस्ती ठीक नहीं, असहिष्णुता ही झगड़े का कारण होता है। गाँधीजी का विश्वास था कि यह सांप्रदायिक झगड़े सांप्रदायिक आग को शांत करना होगा, तभी सद्भाव लोगों में जागृत हो सकती है।

(3.2) अछूतोद्धार : गाँधी भारत में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था के पक्ष में वर्णों का अस्तित्व तो आवश्यक मानते थे, लेकिन अछूत की भावना को दूर करने के हिमायती थ। केयूर भूषण भी हरिजनों को एक समझने की भावना पर बल देते थे। कार्य को छोटा या बड़ा नहीं मानते थे। वे मिनीमाता के साथ जाकर हरिजनों के बच्चों को सँभालने का काम भी करते थे, उन्हें जरा भी झिझक नहीं होता था। अछूतोद्धार के निवारण का अर्थ छोटों को सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश कराना, स्कूलों में प्रवेश कराना है और छुआछूत की भावना को मिटाना। वे सभी भेद मिटाना चाहते थे। रचनाओं में भी और स्वयं के जीवन में भी यह हरिजन सेवक संघ के आजीवन सदस्य बने रहे।

निष्कर्ष :

केयूर भूषण और गाँधीजी के अनुसार मौन, असहयोग, सविनय अवज्ञा अड़ताल आदि सत्याग्रगह के ही विविध स्वरूप हैं, लेकिन अनुचित माँगों को पूर्ण करने के लिए इन साधनों का उपयोग सत्याग्रह कदापि नहीं कहा जा सकता। सत्य पर आधारित होना चाहिए। हमारा ध्येय औचित्य पर आधारित होना चाहिए, तभी वह ब्लैकमेंलिग नहीं कहलाएगा। केयूर भूषण को भी गाँधीजी के सिद्धांत से तुलना करने पर हम कह सकते हैं कि केयूर भूषण गाँधीवादी चिंतक थे, इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

संदर्भ :

(1) रामनाथ (संपा.) : लेखक की बात गाँधीवाद की रूपरेखा, पृ. 6.

(2) *वर्मा, धीरेन्द्र (संपा.) : गाँधीवादी साहित्य कोष, पृ. 21.*

(3) *पट्टाभिसीतारमैया : गाँधी और गाँधीवाद, पृ. 28.*

(4) *पाठक, विनय कुमार : हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ. 58.*

(5) *गाँधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, प्रस्तावना, पृ. 1.*

(6) *सत्य : मंगल प्रभात, मोहनदास करमचंद गाँधी, पृ. 7.*

(7) *अपरिग्रह : मंगल प्रभात गाँधीजी, पृ. 19.*

(8) *अस्वाद : मंगल प्रभात गाँधीजी, पृ. 20.*

(9) *चंद्राकर, रमणी : केयूर भूषण के छत्तीसगढ़ी साहित्य का अनुशीलन, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 69.*

(10) *भूषण, केयूर : छत्तीसगढ़ के नारी रत्न, जनचेतना प्रकाशन, रायपुर, पृ. 92.*

❁❁

Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 54-55
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

संजीव के कथा-साहित्य की अन्तर्वस्तु एवं संरचना

प्रस्तुत शोधपत्र में संजीव के कथा-साहित्य की अंतर्वस्तु एवं संरचना का विवेचन किया गया है। समकालीन कथाकारों की एक लम्बी कतार दिखाई देती है, इनके बीच संजीव अलग दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि इनकी कहानियों में कथा-परंपरा के तत्व भी मिलते हैं और अपने समय का यथार्थ भी मिलता है, जो किसी जागरुक रचनाकार की पहचान होते हैं। उन्होंने किसी विचारधारा विशेष का पक्षधर होने के बजाय प्रतिबद्ध होने पर जोर दिया है। संजीवजी की कहानियाँ पाठकों को जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों और संघर्षों से परिचित करवाते हुए सफलता का मार्ग प्रशस्त करती हैं। वे समाज के विभिन्न पात्रों के माध्यम से तमाम विसंगतियों, रुढ़ियों का विरोध करते हुए शिक्षा और संस्कारी होने पर जोर देते हैं। संजीव की कहानियाँ निजी और पारिवारिक न होकर सामाजिक है। वहाँ उनका समय अवनी विविधताओं में मौजूद है। उनके इस व्यापक कथा-संसार में मौजूदा समय और समाज की तमाम सच्चाइयाँ हैं। कहानियों में फैलाव और कसाव दोनों है। उनकी कहानियों में उनका श्रम साफ दिखाई देता है।

डॉ.पद्मावती

संजीव हमारी पीढ़ी के सबसे ज्यादा मेहनती कहानीकारों में से है। उनकी हर कहानी के पीछे एक सुनिश्चित सोच, तथ्यों पर विस्तृत शोध और शिल्पगत संजगता नजर आती है। उनकी कहानियों में ढीले सिरे नहीं है। उनसे उनकी किसी भी रचना के बारे में विस्तार से बात की जा सकती है जो एक चीज संजीव के संपूर्ण लेखन में जरा भी नहीं ढूंढी जा सकती है, वह है लापरवाही।

संजीव की वैचारिक निष्ठा कभी गोपनीय प्रच्छन्न या अबूझ नहीं रही। संजीव का प्रशंसक होने के लिए उनकी विचाराधारा का समर्थक होना जरूरी भी नहीं। लेकिन यह वैचारिक निष्ठा जड़ या जिद की तरह काठ नहीं है। इसका धारक एक संवेदनशील और भावुक कलाकर है इसका प्रमाण संजीव की कहानियों से मिलता है, वह शुरू करते हैं, व्यवस्था की निधड़क खिल्ली उडाने से (अपराध ा) और समाप्त करते हैं एक हाहाकारी अवसाद से (पूत पूत –पूत पूत) इसके बावजूद गौर करने और दाद देने लायक बात यह है कि चालीस साल लम्बे लेखनकाल में उनमें एक बार भी सैद्वांतिक विचलन या वैचारिक फिसलन नहीं दिखाई देती। ऊहापोह, अनिश्चय, अवसाद और असमंजस फिर भी मिल सकता है, लेकिन गलत वैचारिक निष्कर्ष नहीं। यह सातत्य ही उन्हें एक बड़ा रचनाकार बनाता है।

आलोचक डॉ0 रवि भूषण के शब्दों में ''संजीव की कहानियों का फलक व्यापक है। प्रेमचंद और यशपाल को छोड़कर इतने बड़े कथा फलक का अन्य कोई कथाकार हिन्दी में नहीं है।'' सचमुच जीवन को गहराइयों से पकड़ने को अद्भुत अनुभव संजीव के पास है और इस जीवन को मैं लगभग बीस वर्षो से समझने ओर परखने की कोशिश कर रहा हूँ, इसलिए उनके जीवन को दो भागों में बॉटकर देखना जरूरी हो गया है। या यूँ कहे कि इस कथाकार के भीतर दो तरह की आत्मा वास करती है। पहली आत्मा कथा रचने की प्रकिया में सक्रिय रहती है, तो दूसरी सामाजिक पारिवारिक एवं सांसारिक कर्तव्य निष्ठता को उजागर करती है।

संजीव का लेखन एक प्रयोग है, एक प्रक्रिया है एक इतिहास की पर्त है। जिसे वे अधेड़ने में अहिस्ता – अहिस्ता जिन्दगी की तलाश करते हैं। कथा वस्तु की तैयारी, पात्रों का चयन और मार्मिक घटनाओं का क्रमवार प्रस्तुतिकरण रूढ़ियों के पीछे बोलना बेताल और जिन्दगी की पनाह ढूंढता कोई जिन सा दिखता है, दुर्गम घटनाओं के पीछे जितना रिस्क उठाते हैं, शायद पत्रकार भी उतना न उठाते हैं। गरीग आदिवासी लोगों के बीच रहकर भाषा–बोली की टोह लेना, हृदय की बाते मुँह से कहलवा लेना, रीति रिवाजों की पूरी फेहरिस्त तैयार कर लेना ही नहीं ऐसे मौके पर पहुँच कर उन्हें देखना, उनका सुख–दुख बॉटने तक को तैयार रहते हैं। पहाड़ गुफा, भयानक जंगल घाटियां डकैतों के भयकारी क्षेत्र में पहुँच पहले मनोविज्ञान से प्रयोग करते हैं। अपनी नाना परेशानियों से भरी जिन्दगी में वे साहित्य सृजन की पीड़ा हृदय में छिपाएं वे प्रायः गुम–सुम लगते हैं।

संजीव की भाषा में बिम्बों का सहारा और प्रतीकों की छाजन है। इसमें लोक भी है और शास्त्रीयता भी। इसमें शायरी भी है और जिरह भी। हिन्दुस्तानी पर अद्भुत महारत हासिल है, संजीव को। जब वे इस भाषा में लिखते हैं, तो प्रेमचंद के आरम्भिक दिनों की भाषा के निकट पहुँच जाते हैं। बेले ऐसे अलबेले कि कुछ न पूछिए गुलाब इस कदर सुर्ख कि नजर तक सुर्ख हो उठे '' (दास्तान –ए–चमन) जैसे ही गाँव पहुँचते हैं कथरी, लूगा, लत्ता, भतार आवता, जैसे शब्द कहानी में पेगे मारने लगते हैं। संजीव की भाषा ऐसी है, जिसमें (उन्हीं के शब्दों में) अंदर का सन्नाटा और भी मुखर हो उठता है

ग्राम-डिडोली, पो.ऑ.कनखुल, जिला-चमोली (उत्तराखण्ड)

और कुहासा घना होकर कतरा कतरा टपकने लगता है। यहाँ भाषा फूलों सी खिलने लगती है, भाषायिक ध्वनयात्मकता काफी संजीव ने कथात्मक उपयोग किया है। बिहार में भी मगही भाषियों द्वारा प्रयुक्त नॅय (नहीं) बड्डी (ज्यादा) मिलबे (मिला ही) जैसे उच्चाराणों का सार्थक प्रयोग हुआ है।

बिहार में भी मगही भाषियों का उच्चारण अलग–अलग है और संजीव ने इसका पूरा ख्याल रखा है, कहना न होगा संजीव कहानियों को विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करने के लिए विविधता लाते हैं। भाषा के स्तर पर भी और कहन के स्तर पर भी। कभी में तो किस्सागोई कभी कथा वाचन, प्रवचन, व्याख्यान, बहस, वाद–विवाद संवाद सब मिलजुलकर संजीव की कथाशैली को विस्तृत बनाते हैं और कहानी कथा के कूल किनारों को ढहाती रहती है। संजीव का एक मकसद होता है, कहानी लिखने का। उनका मकसद पूरा होता है, कहानी भी खत्म होती है। यदि मकसद खत्म नहीं होता तो कहानी को ड्रैग भी करते हैं, पर मकसद से समझौता नहीं करते।

संजीव न अपनी पहली कहानी किस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का (सरिका 1976) से लेकर अब तक तकरीबन सौ कहानियों के द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को न केवल समृद्ध किया है, वरन् समकालीन यथार्थ को उसके पूरे परिपेक्ष्य में विभिन्न कोणों से पकड़ने के लिए नए–नए कथा क्षेत्रों की तलाश की है। मैदानी इलाके की कहानियाँ हो या पहाड़ों की गाँवों की कहानियाँ हो या शहरों की सांमतों की कहानियाँ हो या शहरों की सांमतों सेठों की कहानियाँ हो या मजदूरों और परिवर्तन कार्मियों की संजीव बड़ी गहराई के साथ इस गतिशील यथार्थ को पकड़ने का रचनात्मक उपक्रम करते हैं। संजीव की इन सौ कहानियों में कम–से–कम पच्चीस कहानियों ऐसी हैं, जिनके संबंध में अधतन साहित्य कोश को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे सिर्फ और सिर्फ संजीव ही लिख सकते थे। मसलन अपराध ऑपरेशन जोनाकी, प्रेतमुक्ति, सागर सीमांत ब्लैक होल आदि।

अपनी अधिसंख्या कहानियों में संजीव ने मध्यवर्ग से जुडी समस्याओं को बार–बार उठाया है, जैसे जातिवाद की समस्या इतिहास के पुनर्लेखन की समस्या सामंतवाद पूँजीवाद और बाजारवाद से उत्पन्न समस्या। अंतर्वस्तु के स्तर पर संजीव की कहानियों की एक विशेष प्रवृत्ति रही है, जो उन्हें औरों से अलग करती है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध–पत्र में संजीव जी की श्रम की महत्ता निर्विवाद है। चन्द्रतल को नापने वाले मनुष्य के चरण यह प्रमाणित कर रहे हैं कि श्रम के लिए कुछ भी असाध्य नही है। हमारा देश निर्माण की अवस्था मे है, स्वयं के और राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक है कि हम कठोर श्रम करें। वैसे ही संजीव ने अपनी कहानियों में किया है। यथा –

उद्यमेन ही सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथै ।
नहि सुप्तस्थ सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।

संजीव जी का लेखन एक प्रयोग है, एक प्रक्रिया है। एक इतिहास की पर्त है, जिसे वे उधेड़ने में आहिस्ता–आहिस्ता जिन्दगी की तलाश करते हैं। संजीव जाति तोड़ो, इंसान जोड़ो का नारा साहित्य के माध्यम से देते हैं। वे धर्म संप्रदाय व रीतियों को बकवास मानते हैं।

वे अपनी कहानियों में जाति प्रश्न, भूमि समस्या, मजदूर आंदोलन, नक्सलवाद, जनविरोधी विकास, वर्गीय द्वंद, सामंती पूँजीवादी शोषण, अवसरवादी राजनीति और मानव जाति के भविष्य से सम्बंधित समस्याओं, सवालों, स्थितियों, परिस्थितियों और विविध सामाजिक विषयों के संदर्भ में गम्भीर विमर्श खड़ा करते हैं।

अंतर्वस्तु के स्तर पर संजीव की कहानियों की एक विशेष प्रवृत्ति रही है, जो औरों से अलग करती है। संजीव का न केवल कथ्य–फलक अत्यन्त विस्तृत है, बल्कि वे सर्वथा अनछुए विषयों को अपनी रचनाओं में ग्रहण करते हैं। उन्होने एक और तो सागर से शिखर तक फैले क्षेत्र का चयन किया है, तो दूसरी और विज्ञान–टैक्नोलॉजी को भी अपना कथ्य विषय बनाया है। कथ्य–लेखन के क्षेत्र में संजीव वैज्ञानिक पद्वति का अनुसरण करते हैं।

संजीव की कहानियों में जहाँ एक ओर ग्रामीण जीवन के यथार्थ चित्र है, तो वहीं दूसरी ओर मजदूर वर्ग उनकी यूनियनों तथा कारखानों के परिवेश का भी चित्रण है। धनुष टंकार, भूखे रीछ, लाग–साइट, चुनौती, नेता संदेह आदि कहानियों में मजदूरों के जीवन एवं उनकी समस्याओं को उठाया गया है। जिस प्रकार गाँवों में सामान्य जन की स्थिति दयनीय है, उसी प्रकार शहरो में मजदूरों का जीवन कष्टमय है। मजदूरों के शोषण के कई रुप इनकी कहानियों में चित्रित हैं, जिनमें आर्थिक सामाजिक और यौन शोषण की प्रमुखता है।

संदर्भ :

(1) संजीव : आरोहण, पृ. 133.
(2) *संजीव : जंगली बहू, पृ. 31.*
(3) *संजीव : अपराध, पृ. 9.*
(4) *संजीव : प्रेतमुक्ति, पृ. 59.*
(5) *संजीव : मानपत्र, पृ. 151.*
(6) *संजीव : ब्लैक होल, पृ. 13.*
(7) *संजीव : नस्ल, पृ. 47.*
(8) *संजीव : सागर सीमांत, पृ. 61.*
(9) *संजीव : प्रेरणा स्रोत, पृ. 77.*
(10) *संजीव : अंतराल, पृ. 38.*
(11) *संजीव : चुनौती, पृ. 102.*
(12) *संजीव : मकतल, पृ. 12.*
(13) *संजीव : भूखे रीछ, पृ. 59.*
(14) *संजीव : धनुष टंकार, पृ. 3.*
(15) *संजीव : प्याज के छिलके, पृ. 85.*

❁❁

A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Since March 2002
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 56-57
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

छायावादी काव्य में नारी एवं राष्ट्रीय सामाजिक चेतना

प्रस्तुत शोधपत्र में छायावादी काव्य में नारी एवं राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का अध्ययन किया गया है। छायावादी काल का सन् 1920 से 1936 तक माना गया है। यह वह समय था, जब समस्त भारत की जनता गाँधीजी के नेतृत्व में अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने के लिए एकजुट होकर आजादी की लड़ाई लड़ रही थी और उसके हृदय में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना हिंडोले ले रही थी। प्रसादजी ने अपने नाटकों - 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जागृत की तथा भारत के अतीत गौरव का गुणगान किया। छायावादी कवियों ने भी बिम्बों के एक-से-एक आकर्षक प्रयोग किए हैं और अतिश्योक्ति नहीं कि महादेवीजी ने संवेद्य बिम्बों का आकर्षक प्रयोग किया। छायावादी काव्य में एक ओर तो राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करने वाली रचनाएँ लिखी, तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना को परिवर्तित करने का प्रयास किया।

डॉ. श्रद्धा चन्द्राकर

छायावादी काव्य में नारी के प्रति सम्मान भाव व्यक्त किया गया है और उसे पुरुष की प्रेरक शान्ति माना गया है। रीतिकाल में जहाँ नारी को भोग्या मानकर एक वस्तु के रुप में देखा गया वही छायावादी काव्य में उसे एक विशिष्ट स्थान कर गरिमा प्रदान की गई है। मध्ययुगीन साहित्य में नारी के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण उभर कर सामने आया। इसके विपरीत छायावादी युग में नारी एक प्रेरक सखी तथा सहचरी के रुप में स्थापित हुई, छायावादी कवि सौन्दर्य के चितेरे है, किन्तु उनका सौन्दर्यबोध रीतिकालीन सौन्दर्य भावना से एकदम अलग है। रीतिकाल में जहाँ नारी के स्थूल सौन्दर्य का चित्रण है, वहीं छायावाद में नारी के सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण है। पन्त जी ने नारी को भोग की वस्तु नही अपितु प्रतिष्ठित मानवी का दर्जा दिया –

''सिर्फ योनि नही है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।''

छायावादी कवियों ने नारी को पून्य मानकर उसके प्रति श्रद्धा भाव व्यक्त किया है, ''कामायनी'' में प्रसाद जी कहते हैं :

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

जयशंकर प्रसाद ने ''कामायनी'' में नारी को श्रद्धा का विषय माना है। यह वही दौर था, जब प्रेमचंद जैसे रचनाकार भी नारी के प्रति प्रगतिशील चेतना को उजागर कर रहे थे। उन्होंने ''गोदान'' में नारी सम्बंधी दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है :

''नारी पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है,
जितना प्रकाश अंधकार से''

कामायनी में नारी की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। नारी प्रेरणा का पावन उत्स है। निराश पुरुष को नारी ही प्रेरित करती है, वही उसके हृदय में आशा जगाती है, और वही उसे कार्यक्षेत्र में प्रवृत्त करती है।

निराला नारी प्रेम को मानवीय संवेदना के रुप में देखते है। उन्होंने प्रेम को जाति, जन्म वर्ण तथा धर्म परे माना है।

दोनों हम भिन्न वर्ण भिन्न जाति भिन्न धर्म भाव।
पर प्राणों के अपनाओं से एक थे।

पन्त जी नारी के प्रेम को विषय वासना से कोसों दूर मानते थे। यह आरोप लगा कि इस धारा की नारी चेतना जिस प्रेम की वकालत करती थी, वह अतिन्द्रिय थी। कुछ हद तक यह आलोचना सटीक है, क्योंकि समाज और साहित्य का दायरा अभी भी संकुचित था।

नारी उस दायित्व को तोड़ नही पाई थी। इन रचनाकारों के निजी जीवन में झेले गए सामाजिक देश तथा राष्ट्रीय पराधीनता के बोझ तले से मुक्ति के लिए यदि कोई उपाय था। उसे कल्पनाशीलता के तहत समझा जा सकता है।

''अभी तक तो पावन प्रेम कहलाया नही पापाचार
हुई मुझको आज यह मंदिरा हाय गंगाजल की धारा''

छायावादी नारी चेतना को लेकर एक अन्तर्विरोध भी दिखाई पड़ता है। यह माना गया कि इन रचनाकारों ने नारी को अतिशय स्वतंत्रता देने की कोशिश की, लेकिन कहीं न कहीं इस पर मध्ययुगीन पुरुषवादी मानसिकता का भी दबाव रहा। प्रसाद जी ने नारी को श्रद्धा का विषय तो माना, लेकिन यह भी कामना की कि यदि भारतीय नारी पश्चिमी बाजारवादी मूल्यों के चमक–दमक में फंस जाये, तो स्वयं ही वह अपने मूल्यों को खो देता है, पर ऐसा समाज के लिए पतनघाती होगा। उन्होंने नारी को नारीत्व के मूल्यों से जोड़कर देखना चाहा। सेवा, त्याग, समर्पण, ममता कुछ ऐसे ही मुख्य तत्व रहे थे, जो भारतीय समाज के लिये सीमेंट का कार्य करते

प्राचार्य, शासकीय शहीद कौशल यादव महाविद्यालय, गुण्डरदेही, जिला-बालोद (छत्तीसगढ़)

थे। इसके विपरीत यदि नारी पश्चिमी आकर्षण का शिकार हुई, तो रुप तथा सौन्दर्य को उपकरण की तरह उपयोग करेगी। उन्होंने माना कि भारतीय नारी यदि उच्छृंखल हो गई तो समाज का विलगन अवश्यम्भावी होगा।

''आंसू से भीगे अँचल पर
मन का सब कुछ रहना होगा।
तुमको अपनी स्मृति रेखा से
यह संधि पत्र लिखना होगा।।''

छायावादी का काल सन् 1920 से 1936 तक माना गया है। यह वह समय था, जब समस्त भारत की जनता गाँधी जी के नेतृत्व में अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने के लिए एकजुट होकर आजादी की लड़ाई लड़ रही थी और सबके हृदय में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना हिंडोले ले रही थी। प्रसादजी ने अपने नाटकों 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जागृत की तथा भारत के अतीत गौरव का गुणगान किया। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने राष्ट्रीयता को उसके चरम शिखर पर पहुँचाया है। कार्नेलिया भारत को अपना देश मानते हुए उसकी प्रशंसा इन शब्दों में करती है।

''अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।''

प्रसाद जी के काव्य संकलन लहर में संकलित कविता 'पेशेला की प्रतिध्वनि' राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है।

छायावादी कवियों में राष्ट्रीयता की प्रखर भावना नियता की कविताओं में दृष्टिगत होती है। 'जागो फिर एक बार' कविता में निराला ने भारत की उन चिर प्रस्तुत शक्तियों को जगाने का प्रयास किया है, जो परतंत्रता की चीर गहरी निन्द्रा में प्रस्तुत अवस्था में सोये पड़े हैं।

''जागो फिर एक बार
पशु नहीं वीर तुम समर शूर क्रूर नहीं
काल–चक्र में हो दबे आज तुम राजकुंवर, समट सरताज''

भारत माता के उस सुन्दर साकार रुप को जिसके पदतल में लंका कमल की भांति सुशोभित हो रही है, यह भाव इस कविता में दृष्टिगत हो रहे हैं :

भारति जय विजय करे
कनक भास्य कमल धरे,
लंका पदतल भावदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुभि चरण युगल।।

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की कविताओं भी राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत दिखाई पड़ती है। वह अपने गीतों में राष्ट्र को उद्‌बोधन देती हुई कहती है।

चिर सजग आँखें उनीदी
आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना

राष्ट्रीयता के भावना के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं को भी छायावाद में अभिव्यक्त किया गया। निराला जी ने अपनी कविताओं में क्रांति का आह्‌वान किया और गरीबो के शोषण के लिए हर स्तर पर विरोध किया यह विद्रोह भावना उनकी कविताओं में दृष्टिगत होती है।

''चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।।''

दलितों एवं दोनों के प्रति सहानुभूति रखने वाले निराला समाज में समरसता स्थापित करने के पक्षधर थे। वे समाज के सभी कष्टों का मूल कारण इस विषमता को ही मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि छायावादी कवियों ने बिम्बों के एक से एक आकर्षक प्रयोग किए हैं और अतिश्योक्ति नहीं कि महादेवी जी ने संवेद्य बिम्बों का आकर्षक प्रयोग किया। छायावादी काव्य में एक ओर तो राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करने वाली रचनाएँ लिखी, तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना को परिवर्तित करने का प्रयास किया गया।

संदर्भ :

(1) तिवारी, संतोष कुमार : छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, पृ. 61.

(2) *हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, नवम् भाग पर उद्धव, पृ. 141.*

(3) *शर्मा, रमेश चंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 273.*

(4) *शुक्ल, आचार्य रामचंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 407.*

(5) *सिंह, नामवर : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 59.*

(6) *अवस्थी, ललित मोहन का लेख – प्रगतिवादी हिन्दी काव्य, माध्यम, फरवरी 1965, पृ. 30.*

(7) *नामवर सिंह और छायावाद* blogspot.com, *रविवार 15 अप्रैल 2012.*

(8) *प्रकृति के रंग, सुमित्रानंदन पंत के संग डॉ.मन्जू पाण्डे।*

❁❁

A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Since March 2002
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 58-60
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

स्त्री विमर्श के संदर्भ में मृणाल पांडे की रचनाओं का मूल्यांकन

प्रस्तुत शोधपत्र में स्त्री विमर्श के संदर्भ में मृणाल पांडे की रचनाओं का मूल्यांकन किया गया है। उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार एवं पत्रकार के नाते मृणाल पाण्डेजी हर छोटे-बड़े सवाल को शिद्दत के साथ उठाती है, लेकिन अपने पात्रों को जड़ पदार्थ मानकर छोटा नहीं बनाती, बल्कि एक लेखिका के नाते संवेदना के स्तर पर उनसे जुड़ जाती है। उनकी यही विशेषता उन्हें सबसे अलग और विशिष्ट बनाती है। सचमुच स्त्री संवेदना को खंगालती उनकी रचनाएँ समकालीन हिन्दी गद्य-साहित्य की पूँजी है। आज स्त्री-विमर्श अनेक पेचीदगियों के बीच अपना रास्ता खुद तलाश रही है। इस प्रकार मृणालजी समकालीन रचनाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनकी रचनाओं के मूल्यांकन से स्त्री-विमर्श की दशा एवं दिशा का स्पष्ट प्रतिबिंब परिलक्षित होता है।

जानेश्वरी सिन्हा* एवं डॉ.(श्रीमती) कृष्णा चटर्जी**

रचनात्मक गद्य की गहराई और पत्रकारिता की संप्रेषणीयता से समृद्ध मृणाल पाण्डे सातवें दशक की महत्वपूर्ण महिला कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ हिन्दी जगत में अपने अलग तेवर के लिए जानी जाती हैं। घिसी–पिटी सामाजिक मर्यादाओं, सड़ी–गली परंपराओं और कदम–कदम पर व्यक्ति का विकास रोकने वाली वर्जनाओं एवं रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए उनकी रचनाएँ कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से अनूठी है। परिनिष्ठित हिन्दी के साथ–साथ आंचलिक शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं की विशेषता है। इनकी रचनाओं को पढ़ते हुए हम न केवल संबंधित क्षेत्र के लोक प्रचलित इतिहास से अवगत होते हैं, बल्कि वहाँ का जन–जीवन भी अपनी तमाम सांस्कृतिक और सामाजिक भंगिमाओं के साथ हमारे सामने साकार हो उठता है। बहुआयामी प्रतिभा की धनी मृणाल पाण्डे समकालीन कथाकार हैं, जिन्होंने गद्य साहित्य की तमाम विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। भारतीय स्त्रियों के संघर्ष और उनकी जिजीविषा को उन्होंने व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा एवं परखा। यही कारण है कि स्त्री प्रश्न के प्रति गहरी प्रतिबद्धता के बावजूद उनका लेखन स्त्री–विमर्श के संकीर्ण दायरे में सिमटा हुआ नहीं है। 'नारीवाद आंदोलन की विडम्बना' को उजागर करने वाली हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार और पत्रकार मृणाल पांडे अपने लेखन में समय तथा समाज के गंभीर मसलों को लगातार उठाती रही हैं।

समकालीन कथा साहित्य, नाटक और पत्रकारिता को अपनी रचनात्मक उपस्थिति से समृद्ध करने वाली रचनाकार मृणाल पांडे का साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान है। स्त्री–विमर्श की प्रमुख व्याख्याकार मृणाल जी बिना किसी शोर–शराबे के बहुलतावादी समाज जहाँ वर्गों के बीच रेखाएँ बड़ी धुंधली है और जातीय समीकरण बेहद जटिल, अलग–अलग वर्गों और समुदायों में स्त्री के भाोषण और संघर्ष को अपनी रचनाओं में इस तरह व्यक्त करती है कि वह सहजबोध बन जाता है। अपनी रचनाओं के माध्यम से आपने भारतीय स्त्री की आवाज को मुखर किया है, लेकिन उनके मुखर होने में आक्रोश से ज्यादा जोर तर्क, विश्लेषण और समाधान पर हैं। उन्होंने विश्व साहित्य एवं स्त्री आंदोलन का न केवल गहन अध्ययन किया, बल्कि भारतीय संदर्भों में अनकी व्याख्या कर 'स्त्रीवाद' की सैद्धांतिकी को 'व्यवहारिकी' में बदला। उनकी रचनाओं में 'नारी मुक्ति' की छटपटाहट है। वैश्विक आधुनिकीकरण के इस समर में मनुष्य न तो पूरी तरह आधुनिक हो पाता है और न ही परंपरा को त्याग पाता है, फलस्वरूप वह द्वन्द्वात्मक स्थिति में हर पल जीता है। आज भारतीय नारी के समक्ष परंपरा को ढोने की मजबूरी के साथ–साथ 'मुक्ति' की राह तलाशने की उत्कंठा भी है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में मृणाल पांडे जी ने नारी की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों को अपनी 'रचनाओं' का केन्द्रिय विषय बनाया। जीवन के हर मोड़ पर नारी कठिनाइयों एवं विद्रूपताओं से घिरी हुई है। लेखिका ने जीवन के प्रत्येक क्षण को भोगा। समस्याओं पर चिंतन कर समाधान खोजने का प्रयास किया। उनकी रचनाएँ स्त्री जागरण और अस्मिता निर्माण की महत्वपूर्ण कड़ी है। समकालीन हिन्दी रचनाओं में 'मृणाल जी' का योगदान इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने सामाजिक विषमताओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से बड़ी कुशलता से उभारा है।

मृणाल जी, समकालीन स्त्री–विमर्श की एक नयी परंपरा का सूत्रपात करती हैं। भारतीय समाज में स्त्रियों की बनती बिगड़ती स्थिति को ध्यान में रखकर उनके रिश्तों में आए बदलाव को उन्होंने रेखांकित किया है। आपका लेखन का क्षेत्र व्यापक है। आपका रचनाकर्म न केवल स्त्री के सुख–दुख, जय–पराजय, स्वप्न–संघर्ष जैसी भावनाओं को व्यापक संदर्भ में देखने, समझने की दृष्टि देने

**शोधार्थी **सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय वि.या.ता.स्नात.स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)*

के साथ ही आपकी रचनाएँ हमें जागृत भी करती है। मृणाल जी की रचनाएँ मानव–मूल्यों से समझौता नहीं करती, बल्कि समकालीन यथार्थ को सामने रखकर संघर्ष की प्रेरणा देती है। अपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी और प्रेरणास्पद है।

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार मृणाल पाण्डे अपने लेखन में समय तथा समाज के गंभीर मसलों को लगातार उठाती रही है। भारतीय स्त्रियों के संघर्ष और जिजीविषा को भी वे इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखती–परखती रही हैं। यही कारण है कि स्त्री प्रश्न के प्रति गहरी प्रतिबद्धता के बावजूद उनका लेखन स्त्री–विमर्श के संकीर्ण दायरे में सिमटा हुआ नहीं है। उन्होंने अपने रचनाओं के माध्यम से स्त्री की मनः स्थिति का सुंदर आकलन किया हैं आज भी नारी उपेक्षणीय है। उन्हें सदैव भोग्या ही समझा गया, इस पर करारा व्यंग्य करती मृणाल जी की रचनाएँ निश्चित ही पथ–प्रदर्शन का कार्य करती प्रतीत होती है। उन्होंने नारी मन की गहरी पीड़ा एवं संवेदना को समझा और उन सबको मनोवैज्ञानिक तरीके से अपनी रचनाओं के माध्यम से जन–सामान्य के बीच रखा। अपनी अस्मिता को तलाशती स्त्री अनुभव करती है कि 'अस्मिता' तमाम चीजों से बनी एक ऐसी माला है, जिसके मोती बिखरे पड़े हैं सब तरफ। जब तक इन्हें उठाकर एक साथ पिरोया नहीं जाएगा, तब तक माला बनाना मुश्किल है। अतः मृणाल जी अपने रचनाओं के माध्यम से स्त्रियों के बीच संवाद स्थापित कर एक पुल बनाने का प्रयास किया, ताकि उनकी भटकती आवाज को सही मुकाम मिले।

रचनात्मक गद्य की गहराई और पत्रकारिता की संप्रेषणीयता से समृद्ध मृणाल पाण्डे का प्रथम उपन्यास 'विरूद्ध' है। अभिव्यक्ति की ताजगी के साथ सरकारों की स्पष्टता उपन्यास 'विरूद्ध' की विशेषता है। मानसिक ऊहापोह का मार्मिक अंकन और यथार्थ का तटस्थ चित्रण करता यह उपन्यास वस्तुतः 'अस्मिता की खोज' का आख्यान है। उसी तरह उनका अगला उपन्यास 'पटरंगपुर पुराण' हैं, इसमें पटरंगपुर नामक एक गाँव है, जो बाद में एक कस्बे में तब्दील हो जाता है। गाँव के विकास के साथ–साथ कुमायूं–गढ़वाल के पहाड़ी क्षेत्र के जीवन में पीढ़ी दर पीढ़ी में आए बदलाव का अंकन इस उपन्यास में किया गया है। परिनिष्ठित हिन्दी के साथ–साथ पहाड़ी शब्दों और प्रभावशाली कथन–शैलियों का प्रयोग इस उपन्यास को विशेष रूप से आकर्षक बनाता है। इस उपन्यास द्वारा हम लोक प्रचलित इतिहास एवं सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अवगत होते हैं। मृणाल जी का अगला उपन्यास 'देवी' है। इसमें समयातीत स्त्रियों की गाथाएँ समाहित हैं। स्त्रियों के विभिन्न स्वरूपों की डोर पकड़कर आदि भाक्ति के मूल स्वरूप को समझना और शक्ति को नाना रूपों के आइने में आज से लेकर प्राचीन कालीन भारतीय समाज की ढेरों, लोक गाथाओं, महागाथाओं एवं आख्यानों को नए सिरे से इसमें व्याख्यायित किया गया है, यह न विशुद्ध कथापरक उपन्यास है, न कपोल–कल्पित, मिथकों की लीला और न ही वैज्ञानिक इतिहास। वास्तव में 'देवी' उपन्यास में मानव–मन के गोपनीय और रहस्य अंश से लेकर महाकाव्यकारों की उदात्त कल्पना के बिन्दुओं तक यहाँ सभी हैं; कभी जुड़ते, कभी छिटकते, कभी एक साथ जुड़ते–छिटकते हुए। जीवन की ही तरह देवी की ये गाथाएँ कभी कालातीत गहराइयाँ मापती हैं, तो कभी समकालीन इतिहास में कदमताल करती है। देखा जाय तो इन गाथाओं में वे सभी द्वैत मौजूद हैं, जिनसे एक औसत भारतीय का मन–संसार बसता है, अपने सभी उजले–स्याह, राग–विराग समेत। अपने मानाभिमान, दर्प, आक्रोश, करूणा और ममत्व में वे बिम्ब हैं, जिनसे सृष्टि चलती है, जीवन चलता है। साहित्य उपजता है और लोक गाथाएँ रची जाती है। मृणाल जी एक सधी हुई लेखिका है। उनका अगला उपन्यास हैं 'रास्तों पर भटकते हुए' यह गाँवों एवं महानगरों की राजनीति पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका मंजरी में यह जानने की उत्कंठा है कि 'जो होता रहा है वह क्यों होता रहा है ?' इस जिज्ञासा के फलस्वरूप वह बार–बार लहूलुहान होती है। घर–परिवार, सहकर्मी सबसे विच्छिन्न होकर वह भाषा की, भाब्दों की आदिम खोह में छिपने की कोशिश करती है, कुछ हद तक वह सफल भी होती है। अंततः मंजरी को अपने निजी जीवन, विवेक एवं अपनी अन्तरात्मा की परिक्रमा करते हुए रास्तों पर भटकती है। इसी तरह मृणाल पाण्डे जी सत्ता के पीछे भागने वालों और दलालों की करतूतों के दिलचस्प और गुदगुदाने वाले विवरणों से भरा उपन्यास 'अपनी गवाही' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। यह उपन्यास सच बयानी और समाचार रिर्पोटिंग की चमक–दमक भरी दुनिया की वास्तविकताओं पर केन्द्रित हैं सत्तर के दशक में अंगेजी मीडिया में आए उफान में अंग्रेजी और उसके पत्रकार सातवें आसमान पर पहुँच गए, जबकि भाषायी पत्र–पत्रिकाओं पर उनके मालिक कुंडली मारे बैठे रहे। खासकर अब के दौर में मीडिया साम्राज्यों का संचालन करने वाले मालिक संपादकों की फौज । इस उपन्यास की नायिका मीडिया के बदलते स्वरूप को बहुत पास से देखती हैं वह देखती है कि राजनीतिक और आर्थिक फायदों की लड़ाई मीडिया के सहारे कैसे लड़ी जाती है और वह पाती है कि इन अधिकांश मामलों में सच्चाई ही बलि चढ़ती है।

मृणाल पाण्डे का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। उपन्यास लेखन की तरह उनका कहानी लेखन भी अनुपम है। वे एक कुशल गद्यकार हैं। उन्होंने 'दरम्यान', शब्दभेदी, एक नीच ट्रेजिडी, एक स्त्री का विदागीत, यानी कि एक बात थी बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, चार दिन की जवानी तेरी इत्यादि कहानी संग्रह में स्त्री मुक्ति और आत्म निर्भरता की बात करती है। उनकी कहानियों में तेजी से सिकुड़ती इस दुनिया में पिछड़ा भारत 'नयेपन' के ओले सह रहा है। नयापन का दायरा तकनीक, पद्धति, वस्तु से लेकर विचार तक फैला है। नये वाद के आगमन के साथ पुराने वादों के अंत की घोषणाओं में कथा के अंत की घोषणा शामिल है। मृणाल जी की कहानियाँ अपनी जमीन में जड़ों को पसारती, तने को ठसके से खड़ा रखे हुए दिखती हैं जिसमें जीवन की स्थितियाँ और चरित्र दोनों महत्व पाते हैं। उनके पात्र हंसी में रूदन छिपा अस्मिता को तलाशते नजर आते हैं। कथा रस से भरपूर उनकी कहानियों में विवरण की भव्यता के साथ–साथ भाषा का लचीलापन भी है। परंपरा के साथ चलती प्रयोगशीलता भी है, वहीं देशज मिट्टी की गंध लिए आधुनिक प्रयोग के लिए परायों का मुंह नहीं जोहती, बल्कि स्वयं नया रूप रचती है। इसीलिए मृणाल पाण्डे की रचनात्मकता की प्रतिध्वनियाँ भविष्य में भी सुनी जाएगी।

अंततः हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार एवं पत्रकार के नाते मृणाल पाण्डे जी हर छोटे–बड़े सवाल को शिद्दत के साथ उठाती है, लेकिन अपने पात्रों को जड़

पदार्थ मानकर छोटा नहीं बनाती, बल्कि एक लेखिका के नाते संवेदना के स्तर पर उनसे जुड़ जाती है। उनकी यही विशेषता उन्हें सबसे अलग और विशिष्ट बनाती है। सचमुच स्त्री संवेदना को खंगालती उनकी रचनाएँ समकालीन हिन्दी गद्य–साहित्य की पूँजी है। आज स्त्री–विमर्श अनेक पेचीदगियों के बीच अपना रास्ता खुद तलाश रही है। "स्त्री टूटती नहीं, तोड़ी जाती है – कभी समाज के द्वारा कभी खुद के द्वारा।" इन गहरे अहसासों को अपनी रचनाओं में व्यक्त करती मृणालजी संघर्ष करती है। आरोपित सामाजिक मानदण्डों से एवं पुरूष वर्चस्ववादी दबाव से। इस तरह मृणाल जी समकालीन रचनाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उनकी रचनाओं के मूल्यांकन से स्त्री–विमर्श की दशा एवं दिशा का स्पष्ट प्रतिबिंब परिलक्षित होता है।

संदर्भ :

(1) मृणाल पाण्डे के उपन्यास – विरूद्ध, पटरंगपुर पुराण, देवी, हमका दियो परदेस, अपनी गवाही।

(2) *मृणाल पाण्डे के कहानी संग्रह – दरम्यान, भाब्दभेदी, एक नीच ट्रेजिडी, एक स्त्री का विदागीत, यानी कि एक बात थी, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, चार दिन की जवानी तेरी।*

❁❁

A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Since March 2002
Research Link - 174, Vol - XVII (7), September - 2018, Page No. 61-62
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

गोविंद मिश्र की कहानियों में मूल्य टूटन का दर्द : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र में गोविन्द मिश्र की कहानियों में मूल्यों के टूटने के दर्द को रेखांकित किया गया है। वरिष्ठ कथाकार गोविन्द मिश्र ने समकालीन हिन्द कहानी में अपनी रचनाशीलता से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान अर्जित किया है। उनको पाठकों और आलोचकों का अपार आदर प्राप्त है। जब हिन्दी कहानी भांति-भांति के प्रयोगों से आक्रांत हो रही थी, तब उन्होंने जमीन से जुड़ी सच्चाइयों को अपनी रचनाओं में केन्द्रीयता दी। गोविन्द मिश्र की अधिकांश कहानियाँ जीवन मूल्यों के टूटने के दर्द से सराबोर हैं। कहानीकार कहानी के माध्यम से जीवन मूल्यों की सार्थक तलाश करता प्रतीत होता है। तभी तो 'खुद के खिलाफ' की विमला, 'शापग्रस्त' का आदमी और रीना, 'निरस्त' का बूढ़ा बाप, 'गिद्ध' की लड़की, 'हमदर्दी' का घायल नौजवान, 'कहानी नहीं' का गाइड, 'जंग' की माँ तथा बेटी, सभी पात्र मूल्यों के टूटने की व्यथा से पीड़ित हैं। इनके साथ ही इन कहानियों की अंतर्धारा भ्रष्ट व्यवस्था का भी बयां करती है।

अलका* एवं डॉ.श्रीमती कृष्णा चटर्जी**

वरिष्ठ कथाकार गोविन्द मिश्र ने रामकालीन हिंदी कहानी में अपनी रचनाशीलता से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान अर्जित किया है। उनको पाठकों और आलोचकों का अपार आदर प्राप्त है। जब हिंदी कहानी भांति–भांति के प्रयोगों से आक्रांत हो रही थी, तब उन्होंने जमीन से जुडी सच्चाइयों को अपनी रचनाओं में केंद्रीयता दी। मानवीय मनोविज्ञान के अतल में उतरकर उन्होंने उन जीवन सत्यो को उद्घाटित किया जिन पर स्थूल यथार्थ, औपचारिकता, असमंजस व उपेक्षा आदि की धूल जम गई थी। समय की मांग के अनुरुप मिश्र जी ने विकासशील समाज के संघर्ष व स्वप्न को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। 1965 से लगातार लेखन में प्रवृत्त गोविंद मिश्र की प्रसिद्धि का कारण उनका खुलापन है। समकालीन कथा–साहित्य में उनकी कहानियो का स्थान सर्वोपरि है। उनके कथा–मानस की एक और विशेषता है कि वे अपने कथ्य में कितने भी मुखर हो जाए, मगर तथ्य की उपेक्षा नहीं करते। रमेश दवे के अनुसार ''उनके पास परिवेश और प्रकृति की जो स्वदेशी काया है, उसे वे आधुनिकता के नाम पर किसी पर्यावरण विज्ञान की अतिमानवी माया को भी समर्पित नहीं करते। इसलिए उनकी वस्तु या उनका कथ्य स्थानीय हो, ग्रामीण आंचलिक या नागरी हो, पात्र इतिहास–जनित हो या परिवेश–जनित ये कभी अपने स्वदेशी संवेदन तत्व से पृथक नहीं होते। यही वजह है कि शैलेष मटियानी उन्हें एक ऐसा कथाकार मानते हैं, जिसके पास सोच की ईमानदारी है और सोच की बेताग मुखरता भी।''[1] इस तरह गोविंद मिश्र केंद्रीय एहसास को रचना के स्तर पर तलाशने की कोशिश करते रहते हैं। तमाम विसंगतियों के बीच भी वे मानव मुक्ति की कामना करते हैं। ''तीन कहानी संग्रह जिसमें लगभग 151 कहानियां संकलित है। ग्यारह से अधिक उपन्यास ,यात्रा वृत्तान्त एवं निबंधों पर सरसरी निगाह डालें तो एक बात साफ–साफ नजर आएगी–वे चीजों को वर्तमान पर झेलते है, उन्हें अतीत तक जहाँ तक वर्तमान की जड़ें पहुँचती है, ले जाते हैं और उस गहराई को पूरे फोर्स के साथ ऊपर उठाकर उसे भविष्य के क्षितिज–फलक पर फैला देते हैं। बात रहस्यात्मक न लगे, इसलिए इसे यों कहा जाए–उनकी रचना–दृष्टि वर्तमान को परंपरा से जोड़ती हुई भविष्य की थाह लेती है।''[2]

समकालीन कथाकार गोविंद मिश्र साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। कहानी के दौर के कहानीकार और उपन्यास के दौर के उपन्यासकार, दोनों हैसियतों से गोविंद मिश्रजी को जाना गया। उनके पास समृद्ध अनुभव जगत है। अपने कथा–साहित्य से उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को समृद्ध किया है, साथ ही गहन संवेदनशीलता एवं सचेतन रचनाशीलता से नूतन संभावनाओं से संपन्न अनेक अलक्षित क्षितिजों का संधान भी किया है। कथ्य और शिल्प का अभिनव प्रयोग आपकी रचनाओं में मिलता है। डॉ. रामजी तिवारी के अनुसार–''गोविंद मिश्र ऐसी विलक्षण प्रतिभा के कथाकार हैं जो अपने को कभी दोहराते नहीं उनकी दो कृतियों को एक साथ रखकर यह कहना कठिन है कि ये एक ही व्यक्ति की रचनाएं है। मिश्र जी अपनी प्रत्येक कृति में विशिष्ट अनुभव एवं अनछुए विषय को नए शिल्प में ढालकर प्रस्तुत करते हैं।''[3]

गोविंद मिश्र की अधिकांश कहानियाँ जीवन मूल्यों के टूटने के दर्द से सराबोर हैं। कहानीकार कहानी के माध्यम से जीवन मूल्यों की सार्थक तलाश करता प्रतीत होता है। तभी तो 'खुद के खिलाफ' की विमला, 'शापग्रस्त' का आदमी और रीना, 'निरस्त' का बूढा बाप, 'गिद्ध' की लड़की, 'हमदर्दी' का घायल नौजवान, 'कहानी नहीं' का गाइड,'जंग' की मां तथा बेटी–सभी पात्र मूल्यों के टूटने की व्यथा से पीड़ित है। इनके साथ ही इन कहानियों की अंतर्धारा भ्रष्ट व्यवस्था का भी बयां करती है। 'खुद के खिलाफ' एक सशक्त कहानी है, जिसमें विमला प्रेम की असफलता में किस हद तक नीचे गिरती है।

**शोधार्थी, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातक स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)*
***प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातक स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)*

लेखक ने इन सारी स्थितियों का चित्रण इस कहानी में किया है। विमला पाठकीय सहानुभूति भी प्राप्त करती है। लेखक ने इस कहानी में विवाह और प्रेम के परंपरागत प्रस्थपित नैतिक मानों को चुनौती दी है। विमला का यह सवाल–तुम्हें औरत में कोमलता चाहिए यह चाहिए वह चाहिए। कभी यह भी सोचा है कि औरतों को भी तुमसे कुछ चाहिए? न केवल कथानायक को निरूत्तर कर देता है अपितु हमारी समाज व्यवस्था पर भी एक प्रश्न चिन्ह अंकित कर देता है। विमला आज भी सबकुछ छोडकर जाने को तत्पर है किंतु पुरुष उसे अपनाने का साहस और मानसिकता नहीं जुटा पाता, क्योंकि वह भी उसी पारंपरिक किस्म के परिवार और कट्टरता से जकड़ा हुआ है, जहां नैतिकता सम्बंधी मान्यताएँ छूआछूत की बराबरी पर ही होती है। इसके अतिरिक्त यह कहानी महानगरीय संस्कृति पर भी व्यंग्य करती है। 'शापग्रस्त' का नायक लंदन में अपनी बीवी और बेटे को गंवाकर टूट जाता है। वह सोचता था कि उसकी बीवी को मोहब्बत चाहिए पर वह लंदन का बाजार चाहती थी मध्यमवर्गीय परिवार की स्त्री विदेश जाकर वहाँ की संस्कृति में ढल जाती है। प्रायः देखा जाता है कि भारतीय परिवार की नारी जब पश्चिम के मुक्त समाज एवं जीवन मूल्यों से टकराती है, तो उनकी दशा यही होती है, जो रीता और उसके बच्चों की है। अपने जीवन मूल्यों के टूटने से नायक 'शापग्रस्त' स्थिति में है। इसीलिए 'दुर्खीम' जैसे प्रसिद्ध समाजशास्त्री ने सामाजिक मूल्यों को ही आदर्श माना और वे मूल्य को एक सामाजिक तथ्य के रुप में विवेचित करते हुए कहते हैं–''व्यक्ति की अपेक्षा समाज ही मूल्यों का सर्वप्रथमनिर्माता, अंतिम मानदंड और अंतिम उद्देश्य है।''[4] 'निरस्त' कहानी का पिता अपने समस्त जीवन मूल्यों को बदला हुआ पाकर परेशान है। यह कहानी एक पेंशन पाने वाले बूढ़े के जीवन पर लिखी गई कहानी है। इस कहानी में यह बताया गया है कि आदमी जवानी के दिनों में जो काम कर सकता है वह बुढ़ापे में नहीं कर सकता, सिर्फ जिव्हा का स्वाद और लगाव की आशक्ति बनी रहती है। इसी तरह 'कचकौंध' कहानी हमारी आज की जिंदगी के तमाम पहलुओं को व्यक्ति से जोड़कर उसके अंर्तसंबंधों में पेश करती है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनितिक यथार्थ को एक बूढ़े ग्रामीण शिक्षक के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। सुधीर चन्द्र के अनुसार–''यह कहानी शिल्प शैली और कथ्य की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की एक उपलब्धि है।''[5]

जीवन की सच्चाइयों का बखान करती कहानी 'गिद्ध' का कथ्य नया नही है। कहानीकार ने अपने कौशल से चीर परिचित कथ्य पर कहानी लिखी है कि किस तरह जरुरत मंदो से लोग फायदा उठाते है। एक बलात्कारी की जिंदगी बहुत बुरी होती है। उदाहरणार्थ–''वह उसे उस स्थिति में ले गया जहां सुख–दुख कुछ नही था सिर्फ निष्क्रियता बची थी... मूंदती आँखे कोई कहाँ तक खोले रखे..... जैसे ठीक उसके खोपड़े की बगल से कोई रेल धड़धड़ाती गुजर रही थी।''[6] मिश्रजी की अगली कहानी 'हमदर्दी' एक शिक्षित बेरोजगार की स्थिति का चित्रण करती है। इस दुनिया में हमदर्दी से पेट नही भरता उसके लिए रोटी चाहिए। रोटी के लिए नौकरी चाहिए। इस कहानी में प्रशासनिक व्यवस्था के भ्रष्टाचार का चित्रण है–''मुझे खाना...कपड़ा नहीं चाहिए..... घर भी नहीं..... अपने पैरो पर खड़े होने की सुविधा चाहिए..... दे सकतो हो क्या?''[7] कथाकार व्यवस्थागत भ्रष्टता के राई–रत्ती को जानता हुआ जब भी अवसर मिलता है अपनी कहानियों में उसको उघाड़ने का भरपूर प्रयत्न करता है। 'जंग' मिश्रजी की एक बहुत अच्छी कहानी है।इसका कथ्य वृद्धावस्था का जीवन है। इस कहानी की मुख्य पात्र रमा की मां का समाज में अत्यंत विशिष्ट स्थान है। कहा जाता है कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं होती। इस कहानी में मां इतनी स्वार्थी है किवह बेटी की तनिक भी चिंता नहीं करती, कारण कि वह अपने बाप से ज्यादा जुड़ी हुई है। इस प्रकार यह चरित्र अपनी विशिष्टता में एक मनोवैज्ञानिक आधार लिए हुए हैं।

इसी तरह 'किस कीमत पर''ज्वालामुखी' तथा 'अलग–अलग समय' कहानियाँ मूल्य स्तर पर अनेक सवाल उठाकर पाठकों को सोचने पर मजबूर कर देती है। समर्थ भाषा, एवं शिल्प की चतुराई के कारण गोविंद मिश्र की कहानियों में ताजगी महसूस की जाती है। मानवीय मूल्यों एवं आदर्शो के निरंतर लुप्त होने के कारण उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन मूल्यों की व्याख्या की है।

संदर्भ :

(1) दवे, रमेश : आकलन – गोविंद मिश्र, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 268–269.

(2) *वर्मा, भगवान दास : गोविंद मिश्र की रचनाशीलता, वाणी प्रकाशन, पृ. 19, 20.*

(3) *तिवारी, रामजी : आकलन, अमन प्रकाशन, भूमिकान्तर्गत।*

(4) *मेघ, रमेश कुंतल, : सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, भूमिकान्तर्गत।*

(5) *बांदिवेडकर, चंद्रकांत : गोविंद मिश्र : सृजन के आयाम, वाणी प्रकाशन, पृ. 305.*

(6) *मिश्र, गोविंद : खुद के खिलाफ, किताब घर, पृ. 44.*

(7) *मिश्र, गोविंद : हमदर्दी, किताब घर, पृ. 72.*

❁❁